धर्म दर्शन के क्षेत्र में भी अब क्रान्ति लानी होगी

– पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

पूर्वकाल में इतने साधन उपकरण उपलब्ध न थे, जितने अब है। इसलिए उन दिनों स्वल्प उपलब्धियों पर ही सन्तोष करना पड़ता था और जिज्ञासाओं की प्रचण्ड क्षुधा को जो कुछ हाथ लगे, उसी से तृप्त करना होता था। प्रगति की लम्बी यात्रा में मील के पत्थर तो बदले ही जाने थे, सो बदले भी है।

विज्ञान ने तथ्य और सत्य की कसौटी पर जहाँ भौतिकी पर वस्तुओं गुण-धर्म को परखा है, वहाँ ईश्वर और धर्म को भी अछूता नहीं छोड़ा है। उन्हें भी तरह-तरह की बुद्धिवादी कसौटियों पर कसा गया है। इस सन्दर्भ में श्रद्धा क्षेत्र भी लड़खड़ाया है। धर्म के क्षेत्र में पिछले दो सौ वर्षों में एक प्रकार से क्रान्तिकारी भाष्य और सुधार हुए हैं। सुधारवादी तूफान आये हैं। उनने सनातन मान्यताओं की या तो नये ढंग से व्याख्या की है, या फिर नया स्वरूप दिया है। हम देखते हैं कि धर्म क्षेत्र में पूर्वाग्रहों से भिन्न मान्यताएँ प्रस्तुत करने वाले सम्प्रदायों और सुधारकों की इन्हीं दिनों बाढ़ आई है।

यह नहीं कहा जा सकता कि यह सभी सुधारक सही थे। पर यह स्पष्ट है कि पूर्व मान्यताओं के प्रति उनके मन में भारी विद्रोह था। उन्हें उनमें सड़न की गन्ध आ रही थी और ऐसा कुछ ढूँढ़ने, बताने की आकुलता थी, जो अधिक सत्य हो। वस्तुतः उसके लिए अधिक गहरी खोज की जरूरत थी और नये प्रतिपादनों में ऐसे तथ्य जोड़ने की आवश्यकता थी, जो अधिक टिकाऊ होते। पर लगता है सुधारक अत्यन्त आवेश में थे और इस हाथ सुधार, उस हाथ प्रतिपादन के समय साध्य और श्रमसाध्य को तुर्त-फुर्त कर डालना चाहते थे। इस आकुल-व्याकुल मनःस्थिति में पिछली दो शताब्दियों में संसार भर में

सुधारवाद और सम्प्रदायवाद की बाढ़ आई है और उस अन्धड़ ने प्रत्येक धर्म को झकझोरा है।

अधिक स्पष्ट तथ्य भले ही हाथ न लगे हो, पर निस्सन्देह पिछले दिनों दार्शनिक और धार्मिक क्षेत्र में क्रान्तिकारी हवाएँ चली है और उनसे जन मानस को यह आधार मिला है कि जो कुछ पिछले दिनों कहा या माना जाता रहा है, वह सब कुछ यथार्थ ही नही था, उसमें सुधार और परिवर्तन की बहुत गुंजायश है। इन दिनों हम इसी मन:स्थिति में चल रहे हैं और जिस प्रकार वैज्ञानिक क्षेत्र में पूर्वाग्रहों के साथ संगति बैठने न बैठने का विचार किये बिना भौतिक तथ्यों का खुले मस्तिष्क से ऊहापोह किया जा रहा है, उसी प्रकार धर्म के सम्बन्ध में यह आवश्यक समझा जा रहा है कि जो उचित हो, उपयोगी हो उसे ही स्वीकार किया जाय। अनुपयुक्त अथवा अनगढ़ मान्यताएँ वापिस ले ली जायें। भले ही वे कितनी ही पुरातन क्यों न हों।

अनगढ़ के प्रति अनास्था व्यक्त करने का कार्य बहुत हो चुका, एक दृष्टि से आवश्यकता से अधिक भी। अनास्था सरल है। अस्वीकृति में मन के विद्रोही घटकों को भड़का देना भर काफी है। नदी में बाढ़ आते ही तटवर्ती मर्यादाओं की क्रम व्यवस्था देखते-देखते अस्त-व्यस्त हो जाती है, यह सब बिना प्रयत्न के सहज ही हो जाता है। अनास्था सहज ही उत्पन्न की जा सकती है। इन दिनों अनास्थावाद आवश्यकता से अधिक पनपा है। सुधारवाद में पुराने के स्थान पर नया रखने की पुनर्निर्माण प्रवृत्ति होती है, पर अनास्था तो सब कुछ विस्मार कर देना चाहती है। अधार्मिक होने के पक्ष में यह दलील काफी है कि हम भ्रान्त धारणाओं में क्यों उलझें? पर साथ ही यह भुला दिया जाता है कि धारणा रहित मन:स्थिति भ्रान्तियों में उलझने से भी अधिक बुरी है। मर्यादाहीन, आस्था रहित मन तो ऐसा

उद्धत हो सकता है कि मनुष्य जाति की नैतिक और सामाजिक मर्यादाओं को भी तोड़-फोड़ कर रख दे और उस विस्फोट की अव्यवस्था सँभलते भी न बने। धर्म के सम्बन्ध में सुधारवादी, सत्यशोधी दृष्टिकोण ही सराहनीय है। अनास्थावादी अत्युत्साह प्रगतिशीलता का चिन्ह भले ही प्रतीत हो, पर अन्ततः वह भयावह सिद्ध होगा।

अभी यह निर्धारित करना शेष है कि तर्क और तथ्य पर आधारित मानवी धर्म का स्वरूप क्या हो? यो मोटे तौर से विश्व का उच्च स्तरीय चिन्तन एक ही दिशा में चल रहा है कि धर्म का स्वरूप सार्वभौम होना चाहिए। उसे देश और जातिगत परम्पराओं अथवा मान्यताओं के आधार पर वर्गीकृत नहीं करना चाहिए। धर्म शास्त्रों और आप्त पुरुषों से शाश्वत धर्म की स्थापना में सहायता तो ली जा सकती है, पर उनमें से किसी एक को पूर्ण प्रामाणिकता नही मिल सकती। पिछले दिनों यह तो उत्साह रहा है कि समस्त विश्व का एक धर्म हो, पर उसके साथ यह आग्रह जुड़ रहा है कि हमारे ही धर्म को मान्यता मिले। समस्त विश्व को अपने ही धर्म के अन्तर्गत लाने के लिए मध्य काल में कत्लेआम हुए है और धरती को बेतरह श्रोणित स्नान कराया गया है। अब वह कार्य प्रचार और प्रलोभन के आधार पर चल रहा है। हमारा धर्म ही विश्व धर्म बने, इस आग्रह के पीछे दूसरे धर्म वालों की अवमानना का भाव जुड़ जाता है और वह बात धर्म का स्वरूप निर्धारण करने की न रहकर प्रतिष्ठा के प्रश्न की चट्टान से जाकर अड़ जाती है।

पुरातन धर्मों का विश्लेषण करने पर कोई भी तो पूर्ण खरा नहीं उतरता और उसकी मान्यताओं को यह बुद्धिवादी युग शत-प्रतिशत गले उतारने के लिए तैयार नही हो सकता। क्योंकि अनुपयुक्तता के दोष से कोई भी अछूता नहीं है। पौराणिक दन्त कथाओं ने और अपने

वर्ग के प्रति पक्षपात की स्थापना ने किसी भी धर्म को सर्वथा विवेक संगत कहला सकने की स्थिति में नहीं रहने दिया है। न्यूनाधिक मात्रा में सभी इस दोष से ग्रसित हैं। ऐसी दशा में इतना ही हो सकता है कि सार्वभौम और सर्वमान्य धर्म की प्रतिष्ठापना में भले ही भूतकालीन देवदूतों अथवा शास्त्रों के उपयोगी कथनों की प्रशंसा की जाय, पर उसका आधार इतना मजबूत होना चाहिये, जो तर्क और तथ्यों की परख पर कहीं से भी डगमगाने न पावे। व्यक्ति और समाज की महानता को निरन्तर अग्रगामी बनाये रखने वाले तथ्यों से भरा-पूरा उसका स्वरूप हो। पूर्वाग्रहों से ऊपर उठकर ही मौलिक चिन्तन के आधार से ऐसे सार्वभौम धर्म की स्थापना की जा सकती है। आज नहीं तो कल यही करना पड़ेगा, अन्यथा पुरातन के प्रति विद्रोही अनास्था अपनी तोड़-फोड़ में उन मर्यादाओं को भी तोड़-फोड़ कर रख देगी, जो व्यक्ति और समाज की शान्ति और सुव्यवस्था के लिए अनिवार्य रूप से आवश्यक है।

गैलीलियों प्रभृति तथ्य शोधी दृष्टाओं ने चिनगारी भले ही भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में जलाई हो, पर वह दावानल अब किसी एक कोने तक सीमित नहीं रह गया है। दर्शन, अध्यात्म और धर्म भी इन लपेटों से अछूते नही बचे हैं। धर्म के स्वरूप में सुधार की आवश्यकता समझी जा रही है और साथ ही ईश्वर को भी लपेट में लिया जा रहा है। अब जादुई ईश्वर गये बीते जमाने का हो गया। ईश्वर का वर्णन ऐसे चमत्कारी और शक्तिशाली रूप में होता रहा है, जिसे सुनकर बुद्धि हतप्रभ होकर रह जाय। वह कभी किसी का भी, कही भी, कुछ भी करके रख सकता है। इस आतंकवादी प्रतिपादन को सुनकर मनुष्य उसी की शरण में जाने की बात सोचता था। उससे लड़ने में खैर नहीं, इसलिए भक्ति करना ही लाभदायक है। इस भक्ति का स्वरूप क्या

हो? इसके लिए ईश्वर के जीवित या मृतक प्रतिनिधियों के वचन अथवा लेखन ही प्रमाण होते थे। इस दृष्टि से भूतकालीन ईश्वरों की आकृति, प्रकृति, रुचि, इच्छा, आज्ञा के परस्पर विरोधी इतने स्वरूप बन गये, मानों वे एक दूसरे को मार काट करने या नीचा दिखाने के लिए ही पैदा हुए हैं। इन ईश्वरीय आज्ञाओं में ऐसे तथ्य भी भरे पड़े हैं, जो विवेकवादी नैतिकता और सामाजिकता की कसौटी पर खरे नही उतरते।

ईश्वरीय कृपा प्राप्त करने के लिए अमुक विधि विधान से पूजा पाठ कर लेना अथवा सम्प्रदायगत मान्यताओं को अपना लेना पर्याप्त समझा जाता था। इसके बदले ईश्वर असीम इन्द्रिया सुखों से भरपूर स्वर्ग प्रदान करता था और पाप कर्मों का दण्ड मिलने से बचा देता था। यह प्रलोभन उस सरल सी भक्ति क्रिया का निर्वाह करने के लिए कुछ महँगा नहीं था। फलस्वरूप बहुत लोग ईश्वरवादी, ईश्वर भक्त होने का दावा करते थे। साथ ही एक प्रकार के ईश्वर का भक्त दूसरी जाति के ईश्वर भक्तों से घृणा और शत्रुता भी कम नहीं करता था। अपराधी तत्वों ने अहंकार और लोभवश जितना अनाचार फैलाया है, ईश्वर के नाम पर ईश्वर की प्रसन्नता के लिए ईश्वर भक्तों ने परस्पर एक दूसरे का रक्त पान उससे कम नहीं किया है। पुरोहित वर्ग ने अपने को ईश्वर का प्रतिनिधि अथवा विशेष कृपा पात्र सिद्ध करके जिस प्रकार भोली भावुकता का शोषण किया है, वह तो और भी अधिक हृदय विदारक एवं घृणास्पद है।

ईश्वर के नाम पर चल रही अन्धेरगर्दी के विरुद्ध विद्रोह भले ही विस्फोटक रूप धारण न कर सका हो, पर वह सुलगता भूतकाल में भी रहा है और उस विक्षोभ ने विविध रूप में अपना परिचय दिया है। बौद्ध धर्म और जैन धर्म को अनीश्वरवादी कहा जाता है। उनने

सत्कर्म एवं सद्भाव को आत्मिक प्रगति के लिए, सद्गति के लिए पर्याप्त माना, इसके अतिरिक्त ईश्वर के किन्हीं आकार-प्रकारों को मानने को आवश्यक बताया है। वेदान्त दर्शन को आधा नास्तिकवाद कहा जाता है। आत्मा की उच्चतम स्थिति का नाम ही परमात्मा को सिद्ध करके किसी विशिष्ट कर्मी देव दानव के रूप में चल रही भूतकालीन मान्यताओं की उसने भी उपेक्षा कर दी है। यों चार्वाक मत सरीखा उग्र और अनैतिक नास्तिकवाद भी जब तब फूटा है। इन तथ्यों के प्रकाश में एक झाँकी इस बात की मिलती है कि मध्यकाल में भी ईश्वर के नाम पर चल रही अन्धेरगर्दी के प्रति किस कदर संक्षोभ उभरता रहा है।

इन दिनों चेतन को जड़ की ही स्फुरणा के रूप में विज्ञान ने प्रतिपादित किया है और आत्मा-परमात्मा की अतिरिक्त सत्ता मानने से इन्कार कर दिया है, उससे दाशनिक नास्तिकता पनपी है। दूसरी ओर ईश्वरवादियों द्वारा अपनाई जाने वाली रीति-नीति को मानव समाज के लिए अहितकर सिद्ध करके समाज वादियों ने नास्तिकवाद का झण्डा फहराया है। वैज्ञानिक और सामाजिक कसौटी पर ईश्वर को खोटा सिद्ध करने के लिए इन दिनों जो बुद्धिवादी प्रयास हुए है, उनने धर्म धारणा की ही भाँति ईश्वरीय मान्यता की भी नींव कमजोर की है।

अत्युत्साह के आँधी-तूफानों को चीरते हुए पैनी आँखों से हम देख सकते है कि धर्म की ही तरह ईश्वरीय आस्था की भी मानव जीवन को उच्च स्तरीय बनाये रहने के लिए नितान्त आवश्यकता है। वस्तुतः ये दोनों एक ही प्रयोजन के दो पक्ष हैं। आदर्शवादी व्यवहार को धर्म कहते हैं और उत्कृष्ट परिष्कृत चिन्तन को अध्यात्म। यह दोनों ही ईश्वरवाद का जड़ से पोषण करते हैं। यदि सत्समर्थक और असत्

विरोधी दिव्य सत्ता के अस्तित्व से इन्कार कर दिया जाय और मात्र भौतिक सामाजिक आधार पर उत्कृष्ट आदर्शवादिता का समर्थन किया जाय तो बात बनेगी ही नहीं। स्पष्टत: धार्मिकता और आस्तिकता की मान्यतायें त्याग, संयम, सेवा, उदारता का दृष्टिकोण अपनाने के लिए प्रेरित करती है। जिनमें तात्कालिक एवं भौतिक दृष्टि से घाटा ही पड़ता है, नफा नहीं होता। फिर इसे कोई क्यों अपनायेगा? आत्मा का उल्लास, ईश्वरीय अनुग्रह जैसे लाभ ही उत्कृष्ट जीवन के मूलभूत प्रेरणा स्रोत हैं। भौतिक जगत में राजसत्ता की आवश्यकता है और आत्मिक जगत में ईश्वरीय सत्ता की। इसके बिना जो अराजकता उत्पन्न होगी, उससे समस्त व्यवस्था ही लड़खड़ा जायेगी।

धार्मिक सुधारों की ही तरह ईश्वर सम्बन्धी मान्यताओं में भी बुद्धिवादी दार्शनिकता ने काफी हेर-फेर किया है। सुधरा हुआ ईश्वर उद्धत या उच्छृंखल नहीं है, वह अपने बनाये नियमों में स्वयं बँधा है और मर्यादाओं के अनुरूप स्वयं चलता है और उसी राह पर चलने के लिए अपने भक्त अनुयायियों को प्रेरणा देता है।

अध्यात्म का विकास अब किन्हीं जादुई क्षमताओं की उपलब्धि की दशा में पीछे लौट रहा है। ऋद्धि-सिद्धि का कौतुक-कौतूहल प्रस्तुत करने वाली भौतिक क्षमताएँ प्राप्त करने के लिए विचारशील अध्यात्मवादी अब इच्छुक नहीं रहे। क्योंकि यह सब तों बाजीगरी कला के अथवा वैज्ञानिक उपकरणों की सहायता से और भी अधिक मात्रा में और भी अधिक सरलता से मिल सकता है। अध्यात्म की नई परिभाषा है-समष्टि को समुन्नत बनाने के लिए व्यष्टि का अधिकाधिक त्याग करने का उसाह। उपनिषदों का यह प्रतिपादन अब अधिक अच्छी तरह समझा जाने लगा है। जिसमें कहा गया है पवित्रता ही उल्लास की और सेवा ही आनन्द की जननी है। तत्वदर्शन ने पग-पग

पर यह कहा है कि जो स्वार्थ में उसे खोजेगा, वह खोता चला जायेगा और जिसने अपने को खोया है वह अनन्त वैभव का अधिकारी बनता है। सेवा और संयम के दोनों पहिये जिस अध्यात्म की धुरी से जुड़े हुए हैं, भविष्य में उसी को दूरगामी दार्शनिकता द्वारा मान्यता प्राप्त होगी।

आने वाला समय बताएगा कि आप्त वचनों में वर्णित अध्यात्म दर्शन सम्बन्धी प्रतिपादन सत्य की कसौटी पर कितने खरे थे? विवेक या तर्क अगले दिनों श्रद्धा का पूरक बनेगा। विज्ञान स्वयं यह पाएगा कि उसकी मान्यताएँ भावना विहीन तर्क शास्त्र पर टिकी होने के कारण कितनी खोखली थीं। उसके लिये जितनी आवश्यकता विज्ञान के नवीनतम प्रतिपादनों को अध्यात्म अनुशासनों पर लागू करने की है, उससे भी अधिक धर्म दर्शन में अध्यात्म की समग्र परिधि में छाए कुहासे रूपी भ्रम जंजाल को छाँटने की भी। यह शोधन भी उतना ही अनिवार्य है जितना औषधि चिकित्सा के पूर्व स्नेहन, स्वेदन, नस्य, वमन, विरेचन रूपी पंचकर्मों की अनिवार्यता मानी जाती है। भावी अध्यात्म विज्ञान रूपी भट्टी में गल कर ही निखरेगा, ग्राह्य बनेगा।

धर्म, ईश्वर और अध्यात्म का भूतकालीन स्वरूप जो भी रहा है, उसे विकासवादी और बुद्धिवादी युग में नये स्वरूप में ढाला जायेगा। परम्परागत मान्यताओं को जकड़े पकड़े रहने से तो अधार्मिकता और अनास्था ही पनपेगी। विज्ञान ने तथ्य और तर्क की मान्यता प्रदान की है। दर्शन को भी इस बदलाव का स्वागत करना होगा। खीज व्यक्त करते रहने पर तो हम अपने पक्ष की दुर्बलता ही सिद्ध करेंगे।

***

–गायत्री तीर्थ शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार